अप्रतिम अंतःप्रज्ञा के धनी आचार्य महाप्रज्ञ

– डॉ. सोहनलाल गाँधी

इस दुनिया में जन्म लेने वाले बेशुमार व्यक्ति यहाँ से गुमनामी की चादर ओढ़े चले जाते हैं। उनके लिए न आँसू और न कोई शोकाभिव्यक्ति । वे कुछ उल्लेखनीय नहीं कर पाते एवं जीवनयापन के प्रयास में जीवन भर संघर्षरत रहते हैं। उनके जन्म पर किसी का ध्यान नहीं जाता और बिना किसी योगदान के यकायक वे दुनिया से गायब हो जाते हैं । उनके बाद न तो कोई उनको याद करता है, न ही उनके बारे में सोचता है। उनमें से केवल कुछ ही लोग इस धरती पर अपनी विशिष्ट विरासत छोड़ जाते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के जीवन की कहानी उनके तापसिक चमक की यश गाथा है। उनकी जीवन.यात्रा राजस्थान के झुंझनू जिले के छोटे से गांव टमकोर से प्रारम्भ हुई। उस समय इस गांव में बिजली, सड़कें, स्कूल, स्वास्थ्य केंद्र एवं यातायात के साधनों जैसी मूलभूत सुविधाएं मौजूद नहीं थीं। परिणामस्वरूप बरसात में इस गांव का संपर्क वस्तुतः बाकी राज्य से टूट जाता था। आचार्य महाप्रज्ञ का जन्म ऐसे अल्प विकास एवं अज्ञान के परिवेश में 14 जून 1920 को हुआ।

उनके नामकरण संस्कार में उन्हें इन्द्रचंद नाम दिया गया, लेकिन उनकी दीर्घायु सुनिश्चित करने हेतु उनकी नाक छेदकर एक नथ पहनाई गई एवं इस कारण उन्हें एक दूसरा नाम नथमल दिया गया। आचार्य महाप्रज्ञ की लंबी आयु का राज इस रहस्यमय प्रथा में छिपा हुआ था या यह महज एक संयोग था, यह आश्चर्य का विषय है। तर्कवादी इसे अवश्य ही खारिज कर देंगे ; लेकिन मेरा दृढ़ मत है कि उनकी लंबी उम्र का रहस्य उनके चित्त की प्रशांतता में निहित था जिसको उन्होंने तपस्या एवं गहन ध्यान से प्राप्त किया था।

जब शिशु नत्थू की उम्र महज ढाई माह थी, उनके पिता का देहावसान हो गया । मुझे यह बात बेहद आश्चर्यचकित करती है कि बिना औपचारिक शिक्षा के इन प्रतिकूल परिस्थितियों में पले एक बालक ने अपनी प्रज्ञा को इतना विकसित कर लिया कि वह आज दूर.दूर तक महाप्रज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। आत्मसंयम की पराकाष्ठा तक उनकी यह यात्रा क्रमिक एवं अभूतपूर्व थी। वे अपनी धर्मनिष्ठ माता की छत्रछाया में बड़े हुए। उन दिनों सस्ते का जमाना था। नत्थू के परिवार के पास सुविधासम्पन्न जीवन बिताने के सभी मूलभूत साधन उपलब्ध थे, लेकिन अल्पायु में पिता की अकालमृत्यु अपने आप में एक घोर विपत्ति थी। उनकी माता ने असाधारण धैर्य एवं दृढ़ता का परिचय देते हुए अपनी संतान को इस ढंग से पाला कि उसे पिता की असमय मृत्यु से उत्पन्न रिक्तता का शायद ही कभी अनुभव हुआ हो।

बालक नत्थू की माताश्री एक धर्मपरायण महिला थीं जो प्रातः जल्दी उठ कर सामायिक से अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करती थी। सामायिक जैन धर्म की एक आध्यात्मिक परम्परा है

जिसमें 48 मिनटों के लिए साधक पापमय सावद्य प्रवृत्तियों से दूर रहता है । इस अवधि में वह 24 तीर्थंकरों की प्रशंसा में श्रद्धेय जयाचार्य द्वारा रचित 'चौबीसी' ऊँचे स्वर में उच्चारित करती थीं। परम पूज्य जयाचार्य तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य थे। माताश्री आचार्य भिक्षु के गुणों एवं उनके द्वारा दिखाये गए सन्मार्ग की स्तुति के गीत भी गाती थीं। इन गीतिकाओं/ढालों में निहित भावों को शैय्या पर लेटे.लेटे कर सुनते हुए बालक नत्थू आत्मसात कर लेते थे। स्वभाव से वह तुनकमिजाज थे। जब भी उनकी इच्छा की उपेक्षा की जाती या उनकी मांग पूरी नहीं की जाती वह क्रुद्ध हो जाते। क्रोध के अतिरेक में वह भोजन करने से मना कर देते, अध्ययन एवं अन्य लोगों से वार्तालाप बंद कर देते एवं अपने घर के किसी खंबे अथवा दरवाजे से चिपक कर खड़े हो जाते। उस समय वह किसी की नहीं सुनते। परिवार के सदस्यों द्वारा उन्हें शांत करने के सभी प्रयास विफल हो जाते। उनके बचपन के दिनों के इस पहलू का विश्लेषण करने पर जो बात मुझे सर्वाधिक उलझन में डालती है, वह है कि एक बेहद जिद्दी बच्चा वयस्क अवस्था में बेहद शांत एवं स्थिर स्वभाव के प्रज्ञावान् संत में कैसे रूपांतरित हो गया? अपने विवेक को जागृत कर एवं ज्ञान का विकास करके अपने क्रोध पर विजय कैसे प्राप्त कर ली?

मैंने आध्यात्मिक नेताओं एवं प्रख्यात वैज्ञानिकों की एक आम खासियत ढूंढ निकाली है। इनमें से अनेक पढ़ाई में अच्छे नहीं थे और अपने शिक्षकों द्वारा औसत दर्जे के छात्र माने जाते थे। अपने समय के महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन एवं टॉमस अल्वा ऐडीसन ने स्कूल या कालेज में अपनी विलक्षण प्रतिभा का कोई संकेत नहीं दिया, तथापि उन्होंने विश्व को अचंभित करने वाले चमत्कारी एवं अद्भुत उपहार दिये। बीसवीं शताब्दी की प्रखर प्रतिभा आइंस्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त ने हमारी पदार्थ, अन्तरिक्ष एवं समय की समझ में क्रांतिकारी बदलाव किया। टॉमस अल्वा ऐडीसन अपनी स्कूल की पढ़ाई तक पूरी नहीं कर पाये एवं उन्हें केवल अपनी माता द्वारा प्रदत्त शिक्षा का ही लाभ मिला। उनके प्राथमिक विद्यालय के एक शिक्षक ने उन्हें 'बिगड़ा हुआ', 'मूर्ख' एवं 'निक्कमा' के खिताब दिये लेकिन उन्हीं के द्वारा कालांतर में बिजली के बल्ब, फ़ोनोग्राम, टेलीफ़ोन ट्रांसमीटर, मेगाफ़ोन, कार्बन ट्रांसमीटर एवं पुराने सिने कैमरा आदि का अविष्कार किया गया। उन्हें अपने नाम 1000 पेटेंट करवाने का श्रेय जाता है। इसी प्रकार महात्मा गांधी भी, जो अहिंसा के धर्मदूत के रूप में प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचे और जिन्होंने भारत को अहिंसा के मार्ग पर चलकर आज़ादी दिलवाई, अपने स्कूल और कालेज जीवन में औसत श्रेणी के छात्र ही थे। एक अन्य दार्शनिक जिद्दू कृष्णमूर्त्ति का उदाहरण यहाँ प्रासंगिक है। वे बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक नेता थे जो अंतः.सांस्कृतिक.दार्शनिक के रूप में विश्व पटल पर उभरे। उन्होंने बोधि या कैवल्य के लिए 'मार्गविहीन मार्ग' का प्रतिपादन किया। वह तो ब्रिटेन के अपने स्कूल की माध्यमिक परीक्षा तक उत्तीर्ण कर पाने में असफल रहे। यद्यपि इन आध्यात्मिक नेताओं एवं वैज्ञानिकों का बौद्धिक स्तर संभवतया

विकसित नहीं था, किन्तु उनका भावात्मक एवं आध्यात्मिक स्तर श्रेष्ठतर था। इस कारण वह सामान्य जनता को बेजोड़ नेतृत्व प्रदान करने में सफ़ल हुए।

बाल मुनि नथमल के शिक्षा गुरु मुनि तुलसी को भी प्रारंभिक वर्षों में अनुभव हुआ कि उन्हें जैन सिद्धान्तों को समझने एवं आत्मसात करने में कई दिन लग जाते हैं परंतु उनकी सुषुप्त प्रज्ञा शीघ्र ही प्रस्फुटित हुई और इसका उत्तरोत्तर विकास होता गया। मात्र 28 वर्ष की आयु में भारत के जैन समुदाय में ही नहीं वरन अन्य धर्मों के अनुयायियों में भी संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान माने जाने लगे। वह अपने गुरु तुलसी से मात्र छह वर्ष छोटे थे। आचार्य तुलसी एवं मुनि नथमल की जोड़ी विरल थी। जहां गुरु एक कठोर अनुशास्ता एवं महान आध्यात्मिक प्रबंधक थे, वहीं समय के साथ मुनि नथमल एक उच्च कोटि के विद्वान, गंभीर शोधकर्ता एवं श्रेष्ठ मुनि के रूप में प्रतिष्ठित हुए जो अपने गुरु के लक्ष्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थे। जैन तेरापंथ धर्मसंघ को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाने का सम्पूर्ण श्रेय आचार्य तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ की संयुक्त मनीषा को जाता है। आचार्य तुलसी के मार्गदर्शन में उन्होंने प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान जैसी आत्म.साक्षात्कार की तकनीकियाँ विकसित कीं। आचार्य तुलसी एक स्वप्नदृष्टा थे और जीवन में कुछ अभिनव करना चाहते थे। अपने शिष्य मुनि नथमल में उन्हें अपने ध्येय एवम जीवन दर्शन के महान प्रतिपादक एवं एक अप्रतिम व्याख्याकार की झलक दिखाई दी।

अणुव्रत आंदोलन का तात्कालिक उद्देश्य समाज को भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता से मुक्त करना था जिसके दलदल में वह बुरी तरह फँसा हुआ था। ब्रिटेन की दासता से स्वतंत्र होने के पश्चात देश में भड़की हिंसा में धर्म के नाम पर असंख्य निर्दोष लोगों की बलि चढ़ी। यह उनके लिए गंभीर चिंता का विषय था कि विभाजन के बाद धर्म का निर्दयतापूर्वक हिंसा के लिए खुलेआम दुरुपयोग किया गया । उनके विचार से नैतिकता विहीन धर्म आत्माविहीन मृत शरीर जैसा होता है। प्रारम्भ में अणुव्रत आंदोलन के अंतर्गत कुछ छोटे छोटे व्रतों को रेखांकित किया गया। ये लोगों को हिंसा एवं घृणा से बचने एवं नैतिकता का अनुसरण करने का आदेश देते हैं। आचार्य तुलसी भारतीय मानस से भलीभाँति परिचित थे । एक भारतीय कोई कानून तोड़ सकता है, लेकिन व्रत का निष्ठापूर्वक पालन करता है। व्रत की पवित्रता उसके मन में गहराई से जमी होती है । स्वेच्छा से वह एक बार कोई व्रत.संकल्प ग्रहण कर लेता है तो उसे हर हालत में दृढ़तापूर्वक निभाता है। उनके प्रबल अनुरोध पर हजारों देशवासी अणुव्रत आचार संहिता का स्वेच्छा से पालन करने हेतु आगे आए। इस प्रकार अणुव्रत आंदोलन छोटे.छोटे संकल्पों का अनूठा आंदोलन बन गया जिसके अंतर्गत मूल अणुव्रतों के प्रति व्यक्तिगत प्रतिबद्धताओं की अपेक्षा की गई।

जैसे.जैसे अणुव्रत आंदोलन जड़ पकड़ता गया, इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी कि इसके आधार में एक मज़बूत दर्शन होना चाहिए। अणुव्रत मात्र एक व्रत नहीं,

वरन यह सामाजिक उत्कर्ष एवं सामंजस्य का दर्शन है। कोई भी समाज अनुशासन एवं नैतिकता के बिना उन्नति नहीं कर सकता । राष्ट्रीय चरित्र ही देश की समृद्धि एवं खुशहाली का आधार होता है। इस स्थिति में आचार्य तुलसी ने मुनि नथमल को अणुव्रत आंदोलन के लिए एक सामाजिक दर्शन के आधार की संकल्पना का उत्तरदायित्व सौंपा। उन्हें प्राचीन के साथ.साथ अर्वाचीन विचारधाराओं की गहराई से जानकारी थी। उन्होंने मात्र कार्ल मार्क्स की विचारधारा का ही गहन अध्ययन नहीं किया अपितु आधुनिक विज्ञान की भी गहरी समझ हासिल कर ली। उन्होंने 'अणुव्रत दर्शन' जैसे श्रेष्ठ, अतिआवश्यक ग्रंथ की रचना की जिसको अणुव्रत के सटीक दार्शनिक विश्लेषण के रूप में सराहा गया। अपने पाठकों को उनके चिंतन की परिपक्वता की एक झलक देने के उद्देश्य से मैं यहां इस ग्रंथ की कुछ पंक्तियां उद्धृत कर रहा हूं, जिनमें अभिव्यक्त वैचारिक गुढ़ता के कारण ही अणुव्रत जीवन.दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित हुआ :

"कार्ल मार्क्स के समाजवादी दर्शन के अनुसार एक व्यक्ति को समाज में अपने आपको पूरी तरह से विलय करते हुए उसके साथ एकीकृत हो जाना चाहिए, परन्तु इसी के साथ हम साम्यवादी राष्ट्र सोवियत रूस एवं ऐसे कुछ अन्य देशों की विफलता के साक्षी रह चुके हैं। उनका लक्ष्य पूरा नहीं हो सका और न ही यह कभी वास्तविकता बन सका। समाज के समाजवादी स्वरूप में शक्ति के उपयोग से व्यक्ति का स्वार्थ तनिक सीमाबद्ध अवश्य हुआ है लेकिन उसके भीतर से स्वार्थ की धारा सूख नहीं पायी । साम्यवाद को निजी स्वार्थ को परिमित करने की दिशा में एक प्रयोग माना जा सकता है, लेकिन यह व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को नियंत्रित करने के लिए प्रेरित नहीं करता। यह मात्र व्यक्तिगत स्वार्थ को कानून के दायरे में ला कर उसे परिमित करने का प्रयास भर करता है। इस व्यवस्था में क़ानूनों के बावजूद मानवीय स्वार्थपरता ज्यों की त्यों कोमोवेश जारी रहती है और यदि कानून कठोरता से लागू नहीं किए जाते तो व्यक्तिगत स्वार्थपरता में बढ़ोतरी भी हो सकती है। इसका अभिप्राय है साम्यवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति ने अपनी आत्मकेंद्रित मनोवृति को बनाए रखा है। एक गणतांत्रिक समाज में 'स्व' की रक्षा की जाती है। ऐसे समाज में कानून की जकड़ इतनी दृढ़ नहीं होती। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपने आत्मकेंद्रित होने की प्रवृत्ति का पोषण करने हेतु स्वतंत्र होता है। किसी भी शासन व्यवस्था में मनुष्य का 'स्व' अविभाज्य होता है – वह अपना बढ़ा हुआ अहम का त्याग नहीं करता। उसकी सारी बुराइयों की जड़ में उसका यह बढ़ा चढ़ा अहम ही होता है। तनिक सोचें, वह किसके लिए हिंसा में लिप्त होता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, धन संग्रह करता है या अपनी यौन वासना तुष्ट करता है? मेरे अनुसार वह यह सब मात्र अपने लिए करता है। सभी भौतिकवादी व्यवस्थाएं 'स्व' के भाव का उन्मूलन करने में असमर्थ रही हैं क्योंकि वे भौतिकवाद पर आधारित हैं। भौतिकवादी व्यवस्था 'स्व' को परिष्कृत नहीं करतीं वरन् मात्र उसका दमन करती है। अतएव मनुष्य के अवचेतन में बसी हुई स्वार्थपरता की आग बाहर से शांत प्रतीत होती है लेकिन भीतर ही भीतर

सुलगती रहती है। यही कारण है कि व्यक्ति गुप्त रूप से अनैतिक आचरण करता है। आध्यात्मिकता ही वह सत्य है जो स्व को निर्मल करता है। आध्यात्मिकता की राह पर चल कर मनुष्य अपने भीतर की दुनिया से जुड़ जाता है, परिणामस्वरूप वह समाज में रहते हुए भी एकाकी भाव की अनुभूति करने में समर्थ होता है। वह बाहरी दुनिया में रहता अवश्य है, लेकिन उससे कोई लगाव अथवा स्वार्थपरक सरोकार नहीं रखता। स्व से आसक्ति भाव का त्याग ही आध्यात्मिकता है और यही आध्यात्मिकता अणुव्रत की नींव है।"

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार अणुव्रत का दर्शन आत्मसंयम का दर्शन है। 'अणुव्रत दर्शन' के प्रकाशन के बाद इस आंदोलन ने डॉ. एस. राधाकृष्णन, दादा धर्माधिकारी, जयप्रकाश नारायण एवं आचार्य विनोबा भावे जैसे महान विचारकों का ध्यान आकर्षित किया। अणुव्रत आंदोलन छोटे.छोटे व्रतों पर आधारित होने के बावजूद मूल्यों के पुनरुत्थान, जीवन जागृति एवं आत्म रूपातंरण के प्रमुख आंदोलन के रूप में उभरा। इस आंदोलन को एक दर्शन का आधार प्रदान करने का सम्पूर्ण श्रेय आचार्य महाप्रज्ञ को जाता है। यहाँ मैं जिस बात पर जोर दे रहा हूँ वह यह कि उनकी गहन अंतर्दृष्टि के कारण ही अणुव्रत आंदोलन नैतिक जागरण एवं चरित्र निर्माण के राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में उभरा, जो पूरी तरह से गैर सांप्रदायिक था। समय के साथ यह सामाजिक लोकाचार बन गया । जाति, धर्म एवं रंग आधारित भेदभाव के बिना इसने समाज के सभी वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट किया एवं अनेक धार्मिक संगठनों के प्रमुखों ने इसका स्वागत किया। कालांतर में आचार्य महाप्रज्ञ का व्यक्तित्व असाधारण रूप से पुष्पित पल्लवित हुआ एवं वे अपने समय के प्रमुख चिंतक के रूप में देश.विदेश में प्रतिष्ठित हुए।

उनकी महानता का सबसे बड़ा प्रमाण उनकी स्वभावगत दीर्घ.प्रशांतता है। उनके शांत स्वाभाव ने उनके मुखमंडल को एक दिव्य दीप्ति से उद्भासित किया है। जैन एवं अन्य धर्मों में क्रोध को एक घातक पापकर्म माना गया है। यह संघर्ष को जन्म देता है। जो व्यक्ति इसका पोषण करता है, वह स्वतः नष्ट हो जाता है। यह एक ऐसा दोष है जो पूरे समाज अथवा देश को अपनी आग में जला कर उसे खाक कर सकता है। हमारे देश के प्राचीन काल के ऋषि मुनियों ने अपनी तपस्या से असाधारण आध्यात्मिक शक्ति हासिल की थी, परन्तु वे अपने क्रोध पर विजय पाने में असफल रहे। ऋषि दुर्वासा का क्रोध जगविदित है, लेकिन इसके विपरीत हमारे सामने भगवान महावीर का उदाहरण है जिन्होंने विषम परिस्थितियों एवं परिषहों में भी अपनी समचित्तता अक्षुण्ण रखी। वे विषैले कोबरा द्वारा काटे जाने के बावजूद शांत एवं स्थिर रहे । उन्होंने इस पशु पर भी अपनी करुणा बरसाई। बीसवीं शताब्दी के रमण महर्षि अपने क्रोध को परास्त करने के लिए जाने जाते हैं।

मुझे आचार्य महाप्रज्ञ से पहली बार मिलने का सौभाग्य 1960 में मिला जब मैं एक कालेज में अध्ययनरत था। तब से उनके महाप्रयाण तक मैंने उनके जीवन के हर पक्ष को बहुत करीब से देखा है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके कषाय उपशांत

हो गए थे, संभवतः उनका सर्वथा उन्मूलन कर दिया गया था। मैंने कभी उनके चेहरे पर क्रोध अथवा आवेश की छाया नहीं देखी। उनका मुख सदैव एक स्निग्ध मुस्कान से आलोकित रहता था।

आचार्य महाप्रज्ञ के लिए 'ध्यान' शब्द में अनोखा आकर्षण था । जैन धर्म के पवित्र ग्रन्थों में ध्यान, कायोत्सर्ग जैसे शब्दों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है। जब भी भगवान महावीर किसी कठिन परिस्थिति का सामना करते थे, वे कायोत्सर्ग मुद्रा में चले जाते थे। कायोत्सर्ग का शाब्दिक अनुवाद है 'देह से परे उठना'। यह भावातीत अतीन्द्रिय अवस्था है जिसमें योगी को शरीर के स्तर पर कोई अनुभूति नहीं होती। आचार्य महाप्रज्ञ इस बात को लेकर उलझन में थे कि उस अतींद्रिय अवस्था तक कैसे पहुँचा जाये जिसके बारे में प्राचीन ऋषि.मुनियों ने बहुत कुछ कहा है। जब उनकी आयु मात्र 20 वर्ष थी, उनकी सूक्ष्म संसार की अन्वेषण यात्रा प्रारम्भ हो गई थी, जो उनके कायोत्सर्ग सिद्ध करने तक जारी रही। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वे ध्यान की परम अवस्था को प्राप्त कर चुके थे । इस भौतिक संसार का यथार्थ जानने के लिए वह घंटों तक अपने अन्तर्मन की आंतरिक दुनिया में निमग्न रहते थे। प्रातः चार बजे अपनी शैय्या त्याग देते एवं ध्यान से अपना दिन प्रारम्भ करते थे।

वर्षों तक सूक्ष्म संसार की खोज यात्रा में संलग्न रहने के उपरांत आचार्य महाप्रज्ञ ने विश्व को एक वैज्ञानिक आधारयुक्त ध्यान प्रणाली की भेंट दी जो आज प्रेक्षाध्यान के नाम से जानी जाती है । निस्संदेह आचार्य महाप्रज्ञ ने मन की अति संवेदी अवस्था प्राप्त कर ली थी। इसका साक्ष्य हमें उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों में निहित पांडित्यपूर्ण लेखन में मिलता है। उनके गुरु आचार्य तुलसी उनकी इस उपलब्धि पर बहुत आह्लादित थे। आचार्य महाप्रज्ञ सदैव प्रत्यक्ष अनुभव करने में विश्वास रखते थे। वह धार्मिक रूढ़ियों में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने तीन सौ से अधिक पुस्तकों का लेखन किया है जिनमें से अनेक अपने पाठकों के मध्य बेहद लोकप्रिय रहीं। इन पुस्तकों में उन्होंने पुरातन सिद्धांतों से हट कर नई धारणाओं को स्थापित किया। केवल एक अतिसंवेदी बोधयुक्त व्यक्ति ही जैन आगमों का सम्पादन कर उसकी नई व्याख्या कर सकता है। मुझे उनकी यह बात चमत्कृत करती है कि अपने गुरु की निगरानी में वे चालीस वर्षों से कम अवधि में गूढ जैन आगमों का सम्पादन करने में सफल रहे। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वानों के अनुसार सामान्यतया यह कार्य 150 वर्षों में भी संभव नहीं था। उनकी यात्रा प्रज्ञा की परिक्रमा थी । मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे उनके चरणों में बैठकर ज्ञानाराधना का अवसर मिला । मुझ पर उनकी करूणा बरसती थी । गुरुदेव की सन्निधि में व्यतीत अनेक दुर्लभ क्षण मेरे स्मृति पटल पर अंकित हैं । यही मेरी सम्पदा है । उनकी अहिंसा की विरासत युगों.युगों तक लोगों को प्रेरित करती रहेगी। आज उनके जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर मैं अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ । इस विलक्षण पुण्यात्मा को कोटि.कोटि नमन ।